# सब कुछ निस्पन्द है

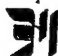
नारायणलाल परमार

के

नव-गीत

# सब कुछ निस्पन्द है

नारायणलाल परमार



आशु प्रकाशन
इलाहाबाद-२११००२

# सब कुछ निस्पन्द है

[ नारायणलाल परमार के नव-गीतों का संकलन ]

ISBN 81-85377-18-9

प्रकाशक

आशु प्रकाशन
११४३/३१ पुराना कटरा
इलाहाबाद-२११००२

□

प्रथमावृत्ति | १९९३

□

मूल्य | सजिल्द : साठ रुपये
अजिल्द : तीस रुपये

□

आवरण
शिवगोविन्द पाण्डेय

□

मुद्रक :
पियरलेस प्रिंटर्स
१, बाई का बाग, इलाहाबाद

## 'सब कुछ निस्पन्द है' गीत-संकलन का रचनात्मक वैशिष्ट्य

'सब कुछ निस्पन्द है' कवि नारायणलाल परमार का चौथा कविता संग्रह है। इसके पूर्व उनके 'कांवर भर धूप' (1973) और 'रोशनी का घोषणा-पत्र' (1980) नवगीत संग्रह तथा अभी 'खोखले शब्दों के खिलाफ' (1992) कविता संग्रह प्रकाशित हुआ है। नारायणलाल परमार किसी भी खेमेबाजी और नारेबाजी से अलग अपनी वास्तविक रचना धर्मिता के कारण हिन्दी नव-गीत विधा में एक विशेष स्थान बना चुके हैं। उनकी कविताओं में न तो अंतर्मुखी वैयक्तिकता की सुरंगे हैं और न मार्क्सवादी जीवन दर्शन से प्रतिबद्ध राजनीति की सीमाएँ। वे सही मायने में जन कवि हैं। उन्होंने वर्तमान जन जीवन का सुख-दुख, उसका यथार्थ बड़ी गहराई और तीव्रता से अपनी कविताओं में अंकित किया है।

नारायणलाल परमार ने अपने कविता संग्रह 'खोखले शब्दों के खिलाफ' के सम्बन्ध में लिखा है—'संकलन की मेरी ये कविताएँ परिवेश से गहरे तादात्म्य की उपज हैं। इसीलिए इनमें जीवन और जगत के हालात अपनी गहराई से सामने आते हैं। समय और समाज की हलचलों और उनकी टकराहटों से पैदा हुई ये कविताएँ आम आदमी की वेदना में तो शामिल हैं ही, उसकी खुशहाली के लिए संघर्ष का संबल भी बनती है।'

कवि के इस वक्तव्य की सच्चाई उनके समस्त रचना कर्म पर लागू होती है और उसके इस वक्तव्य मे कोई अतियोक्ति या आत्मश्लाघा का बड़बोलापन नही है।

'सब कुछ निस्पन्द है' कवि नारायणलाल परमार का उनके समय-समय पर लिखे गये नव-गीतों का संग्रह है, इसलिए इनमे विविधता मिलती है। साथ ही ज्यादातर गीत ताजे बिम्बों, यथार्थ के तीक्ष्ण अनुभवो और संवेदनात्मक आवेशों से युक्त हैं।

'सब कुछ निस्पन्द है' शीर्षक सम्भवतः कवि ने इसलिए दिया है कि इस संग्रह के अंतिम बहुत से गीत वर्तमान विसंगतियों को मनुष्य द्वारा चुपचाप झेलने की मजबूरी का चित्र उपस्थित करते हैं। इन गीतों में परम्परा से मुक्त होने की मनुष्य की दुविधा, भय, मोह,

विवशता, लाचारी आदि का चित्रण है। इसी वजह से वह अन्दर ही अन्दर टूटने लगता है, उसमें अनास्था उत्पन्न होती है। और उसे अपना जीवन बोझ मालूम पड़ने लगता है। तथापि कवि के अन्दर इस स्थिति को तोड़ने की भयंकर बेचैनी है। वे अपने बहुत से गीतों में वर्तमान आर्थिक एवं राजनीतिक विसंगतियों, विषमताओं, अभावों आदि का चित्रण केवल यथार्थ बोध के लिए नहीं करते। वे इन सब से छुटकारा पाने के लिए लोगों को ललकारते हैं :—

पहचानो अधरों पर पानी है / यात्राएँ बंधी हुई पाँव में,
खिलौनों से खेल रही भूख है / शोर मच रहा सारे गाँव में।
आबरू मेहनत की मुट्ठी में / भाग रहे हो कहाँ मुसाफिरों।

सबसे बड़ी बात यह है कि कवि नारायण लाल परमार वर्तमान अविश्वास के माहौल में लोगों का विश्वास डिगने नहीं देते। वे अपने को बेचारा और बेसहारा समझने वालों के अन्दर भी अपनी ताकत का विश्वास और आस्था उत्पन्न करते है :—

बार बार आती है आँधी / ताल ठोंक कर पेड़ खड़े है।

वर्तमान विसंगतियों के सम्बन्ध में बहस करने वालों की कमी नहीं है और सरकार भी अपनी उपलब्धियों का ढोल पीटती है। परन्तु गरीबों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता। नारायणलाल परमार इसे बड़ी शिद्दत से महसूस करते हैं और जीवन की विसंगतियों को दूर करने के लिए संघर्ष का आह्वान करते हैं :—

काम नहीं आयेंगी, व्यर्थ लन्तरानियाँ।
पौरुष ने कब चाही, कभी मेहरबानियाँ।
होता यह आया है / सूरज सोता नहीं।
हम है संघर्ष रथी / चाहिए नहीं हमको।
विजय गीत दान में।

वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ वे क्रांति का घोष करते हुए कहते हैं :—

दुहराते क्यों नही / क्रांति की कहानी सब।

नारायणलाल परमार का दृष्टिकोण निराशावादी या पलायन-वादी न होकर पॉजिटिव और आशावादी है। उन्हें विश्वास है कि मनुष्य की यह पीड़ा स्थाई नही है। मनुष्य के सक्रिय प्रयास से यह स्थिति बदलेगी :—

कौन बनाये अभी घोंसला / सोच रहे हैं कुछ वन पांखी,
इन्द्र धनुष आमंत्रित करती / टहनी पर कोयल अमुवा की
आते होंगे जादूगर से / क्षण में छाने वाले बादल।

मानव जीवन से गहरे सरोकार के अलावा नारायणलाल परमार के नव-गीतों की दूसरी प्रमुख विशेषता उनका प्रकृति और जीवन से तादात्म्य है। उन्होंने प्रकृति के प्रतीकात्मक उपयोग भी किए हैं और उसके माध्यम से जीवन का यथार्थ उपस्थित किया है। उनके प्राकृतिक चित्र जहाँ एक ओर वर्तमान जीवन की उदासी व्यक्त करते हैं, वहाँ दूसरी ओर उनमें जीवन का रोमैंटिक उल्लास भी है :—

नहीं रह गया मौसम / कल जैसा चुलबुला,
जाने कब आयेगा / खुशबू का काफिला।
एक नये फागुन का / हमें इन्तजार है।

फागुन के रोमैंटिक उल्लास का चित्रण अन्य अनेक नवगीतकारों ने किया है। ऐसे बहुत से चित्र इस संग्रह में भी हैं। परन्तु प्रकृति का सहज स्वाभाविक और आलम्बन रूप में चित्र उपस्थित करने में नारायणलाल परमार को जो सफलता प्राप्त हुई है, उससे भवानी प्रसाद मिश्र की याद ताजा हो जाती है :—

राग भी हूँ / नाग भी हूँ / बाँस वन हूँ मैं।
चिरइया की चहकनों के / जानता हूँ भेद
कभी पुरवा पास आकर / बाँचती है वेद,
जेठ दहके / पूस चहके / पर मगन हूँ मैं।
यदि गिलहरी करे खड़ खड़ / या कि आये तेज अंधड़,
नही बिखरा / अधिक निखरा / बस सघन हूँ मैं।
नही जाती / हँसी मेरी / और बाँहें / कसी मेरी
दुपहरिया भर / करूँ हर हर / चिर लगन हूँ मैं।

इसमें मनुष्य के लिए जीवन संघर्ष में बिना हार माने सतत डटे रहने की जो व्यंजना है, उससे इसका सौन्दर्य और बढ़ जाता है।

नारायणलाल परमार ने प्रकृति में मानवीय चेतना का आरोप करके अनेक वक्र और लाक्षणिक प्रयोग किये हैं, यथा—

- खुशबू है निथर रही / संध्या मछुआरिन के गोल गोल जूड़े से।
पसर गई अँगना भर / भौजी सी शाम।
दिशा, पहन कर लगी घूमने / सतरंगी चोली।
ननदी सी हवा गजब / मचा रही शोर।

इसके अलावा भाषा को अधिक मसृण और यथार्थ बोधक बनाने के लिए उन्होंने निथरना, अंगना, हिरनियाँ, अमुवा, नदिया, अँजुरी, उलीच हल्दिया चाँदनियाँ आदि अनेक आँचलिक और मृदु प्रयोग किये हैं। उनकी भाषा में चित्र उपस्थित करने की अद्भुत् क्षमता है :–

फूलों सा चेहरा / दूध सी हँसी।
प्रीति रस भरे चरण / छुम छनन छन,
हो जैसे राधा का / गीत - आचरण,
गर्वित लय तान मे / दृष्टि हो कसी।

सबसे बड़ी बात यह कि कथ्य के अनुसार नारायणलाल परमार की भाषा का स्वरूप बदल जाता है। उसमें जनवादी कविता का कृत्रिम आक्रामक तेवर न होकर एक गहरी संवेदनात्मक व्यंजना होती है। कथ्य और अभिव्यक्ति का यही बिन्दु परम्परागत और जनवादी दोनों गीतकारों से कवि नारायणलाल परमार को अलग करके उन्हें विशिष्ट बनाता है :—

पड़ेगा मनुष्य को / पौधे की तरह पुनः रोपना।
था समुद्र शक्ति का / औचक ही ढल रहा,
ज्यों मसान जलता है / वैसे ही जल रहा,
नियम है, वस्तु को / विसर्जन से छीनकर /
सर्जन को सौंपना।
अस्मिता गँवाकर भी / बैठा है जुए में,
क्रान्ति की तलाश उसे / सुविधा के कुएँ में,
भला नही लगता है / घूरे को और अधिक
ढाँकना-तोपना।

नारायणलाल परमार इस स्वीकारोक्ति के अनुसार छद्म क्रान्ति के नारों से दूर, जीवन में गहरे सरोकार रखने वाले कवि हैं, जो जीवन की वर्तमान विसंगतियों को दूर करके एक सर्जनात्मक क्रान्ति या बदलाव चाहते हैं। उनका यह गीत संकलन वर्तमान यथार्थ की अभिव्यक्ति के साथ-साथ इस ऊर्जा से ओत प्रोत है। इसलिए इसका भी उनके पूर्व कविता संग्रहों की तरह हिन्दी जगत् में स्वागत होगा।

—प्रो० डॉ० परमलाल गुप्त
'नमस्कार,' शारदा कालोनी,
सेमरिया चौक, सतना, (म० प्र०)

# गीत-क्रम

● ●

# सब कुछ निस्पन्द है

## हरे हो जाएँ

सोचते न बैठें, अब
आओ कुछ करें।

अभी अभी आँसू थे
बाँसुरिया पी गई।
खेतों में थी उदास
फसलें मब जी गईं।

पातों की तरह पुनः
हो जाएँ हरे।

हवाएँ खड़ी पहन
बूँदों की झालरें।
पगडंडी बजा रही
है अपने गाल रे।

प्रश्न जो अजन्मे हैं
उनसे क्यों डरें ?

बहका हर पंछी तक
चहक रहा है।
मेघों में भी पानी
महक रहा है।

आँखों के मदरसे
सपनों से भरें।

●

## बिना कुछ कहे

लम्बा सा एक अदद और दिन
निकल गया बिना कुछ कहे।

शाकुंतल सुबह् के
मोर पंख झर गये।
दुपहर के यत्न बहुत
परेशान कर गये।

गले लिपट हवाएँ नाचती रहीं
बेचारी दिशा-दिशा सुलगन ही सहे।

राज भवन से निकली
अभी-अभी साँझ है।
फूल पारदर्शी हर
पर खुशबू बाँझ है।

संकल्पित इस सारी यात्रा में लगा रहा
कील गड़ा मरुथली पड़ाव, कहकहे।

सन्नाटा जीवित है
सूख गई झील भी।
अंधी है रात करे
कैसे तफसील भी।

सूर्य की समाधि पर लगातार,
रो—रो कर अंधियारा बहे।



## क्यों न हम

अरसे से पत्थर की तरह चुप रहे आए
झरनों की तरह चलो, शोर हम मचाएँ।

वर्दी में खड़े पेड़
बाढ़ में बदल गये।
चाँद की हथेली के
रंग भी मचल गये।

पिंजरे की बुलबुल सा क्यों हम रोना रोएँ
छन्द तोड़ सूरज के देश में निकल जाएँ।

पिछले सन्दर्भों को
पीठ से उतार लें।
फिर अपनी ऋजुता को
स्वयं ही गुहार लें।

गुजर रही तारीखें, हम उनके साथ चलें
चट्टानों के लिए व्याकरण बनाएँ।

चौराहे पर खड़े
देर बहुत हो गई।
विश्वासों की बत्ती
जाने कब सो गई।

निकल कर गुफाओं से क्यों न एक साथ हम
इस सारे जंगल को नींद से जगाएँ।



## किसका सगा हुआ ?

अब तक यह सन्नाटा बोलो
किसका सगा हुआ ?

थकी न अब तक विश्वासों की
अहरह कोई चील ।
यद्यपि ठोंक रहा है कोई
शंकाओं की कील ।

दीर्घ प्रलापों का है अब तक
मेला लगा हुआ ।

एक एक कर पीले पत्ते
अलग हो रहे हैं ।
चुप्पी के दोनों कंधे
कुहराम ढो रहे है ।

सोच नहीं पाते पर्वत, यह
कैसा दगा हुआ ?

निष्ठा आहट शून्य हो गई
भूल गई संवाद ।
नहीं अँगीठी को जलने की
अब तक कोई याद ।

सपनों में भी मिला न कोई
जुगनू जगा हुआ ।



## फागुन की चितवन

लिए बालियाँ मौसम आता
खुशबू खुशबू हो जाता मन।

धूप गीत गाते हैं पंछी
कत्थक करती हवा बावरी।
चाँदनिया में पेड़ नहाते
अल्हड़ सारा लगे गाँव री।

बाँट रही दो अँजुरि भर भर
पगडंडी मानों अपना पन।

खुल जाते हैं भेद समूचे
दबी दबी सी मुस्कानों के।
क्षण भर को भी चुप न रहेंगे
बौराए झुमके कानों के।

देह इकहरी चूनर ओढ़े
खूब बजाती कंगन खन खन।

हरा भरा हो जाता सब कुछ
सच होती सपनों की पाती।
चेहरा खिलते सूर्यमुखी सा
नज़र केशरी गंध उड़ाती।

पीपल जैसी लम्बी साँसें
गोहराती फागुन की चितवन।



## आज फूल मौसम के

आपस में गले मिल रहे
आज फूल मौसम के।
अभी अभी झरे है
ये नभ की शाख से।
या टपके हैं सहज
बादल की आँख से।

हीरों की सी चमक लिए
आस पास हैं दमके।
रात रात भर डूबे
चाँदनिया झील में।
लगा रहा इन्द्रधनुप
इनकी तफसील में।

मुरझाए आँचल में
झूमर से ये झमके।
एक गीत छेड़ दिया
महुए के नाम पर
महक रही उधर गंध
बोराए आम पर।

बुने हुए लगते ये
सोने रंग रेशम के।



## डूब गया बूढ़ा दिन

डूब गया बूढ़ा दिन
बार बार खांस कर।

सांझ खड़ी देखती
गोधन का लौटना।
श्यामा खुश, बछरू के
कहीं एक चोट ना।

मुंह मारा गौरी ने
अब सूखी घास पर।

एक दिया आ बैठा
तुलसी के चौरे पर।
अंधियारा कांप उठा
देह छोड़ दी नश्वर।

चिड़िया है फुदक रही
आस पास सांस भर।

दौड़ रहे है जुगनू
इधर उधर भाग कर।
बांट रहे हैं सबको
उजियारा चुटकी भर।

नजरें, पर टिकी नहीं
एक क्षण पलाश पर।



## इंतज़ार है

गन्ने की फसलों को
आज फिर बुखार है।

वासंती धूप में
गमज़दा हवाएँ।
थकी थकी घूम रही
है दाएँ बाएँ।

उम्र की ढलान पर
शिशिर तार तार है।

कल से ज्यादा दुर्बल
लग रहा पलाश है।
सरसों का पीलापन
आज भी उदास है।

उजली हर किरण किरण
लगती निस्सार है।

नहीं रह गया मौसम
कल जैसा चुल-बुला।
जाने कब आएगा
खुशबू का क़ाफ़िला।

एक नये फागुन का
हमें इन्तज़ार है।



## उस दिन से

जाने क्यों बादल नाराज़ हुए
परती पड़ गए खेत उस दिन से।

नहीं किसी मेड़ पर
महुए के फूल झरे।
मोर चंग भी न बजे
किसी गाँव में अरे।

हिरन है उदास बीच जंगल मे
पलाश के चिके निकेत उस दिन से।

माँझी हँसता नहीं
चंदा के साथ अब।
पड़ते कब ताल पर
पुरवा के हाथ अब।

सुबह सुबह मुर्गा भी मौन लगे
नदिया हो गई रेत उस दिन से।

हाल चाल पूछती न
कोयल है आम से
खुशबू लौटी नही
है तीरथ धाम से।

आँखों में इन्द्र धनुप आते हैं अब कहाँ
उछल कूद करें प्रेत, उस दिन से।



## कोई अनुबंध...

ऐसे ही जी लिया आज तक
कोई अनुबंध कभी किया नहीं।

छाती पर बोझिल सा
टँगा हुआ है वसंत।
घाटी से कई बार
गुजरा जीवन अनंत।

डूबा हूँ अक्सर लय ताल में
पर उनको छन्द कभी दिया नहीं।

रुका नहीं यात्रा का
अमृत पीता रहा।
सांसों में उलझा पर
उनको जीता रहा।

फूलों के आस पास रहकर भी
उनका मकरंद कभी पिया नहीं।

सदियों को अर्पण कर गीत
आज मौन हूँ।
जंगल में निर्विकार
जैसे सागौन हूँ।

मन के दरवाजे सब खुले थे, खुले रहे
उनको भी बन्द कभी किया नहीं।



## औचक बड़ी हुई

सरसों फूली, अभी अभी लो
औचक बड़ी हुई।

मीठा मीठा मौसम मानो
सफर गुल मुहर का
याद आ गया पता
खशबुओं को अपने घर का।

रिश्तों की चाँदनी आँगने
आकर खड़ी हुई।

नर्म शाख पर अमुवा की
थिरकी, कोयल बोली।
दिशा पहनकर लगी घूमने
सतरंगी चोली।

जाने किन राहों में है
वीरानी पड़ी हुई ?

नाच रहे है ताता थइया
सपने बापू के।
क्यों अम्मा की साधें
ऐसे मौके पर चूकें ?

गीत ढली नदिया बतियाती
लहरों मढ़ी हुई।



## गुलाबों के ढेर

धूप में नहाया यह
है अभी कनेर।

खत्म हुआ थकी हुई
हवा का सफर।
गंध भरे झोंकों में
उड़ें खंडहर।

शाखों पर खिले हैं
गुलाबों के ढेर।

फूलों से बतिया कर
मुदित तितलियाँ।
पोर पोर नाच रही
गंध अंगुलियाँ।

कौन मनाएगा अब
इमली की खैर।

अंगड़ाई ले रहा
दर्द शिला का।
अधरों पर फहराती
गीत पताका।

रात लगे कुन कुनी
दिन बड़े दिलेर।



## बांस वन हूँ मैं

राग भी हूँ,
नाग भी हूँ
बांस वन हूँ मैं ।

> चिरइया की चहकनों के
> जानता हूँ भेद ।
> कभी पुरवा पास आकर
> बांचती है वेद ।

जेठ दहके,
पूस चहके
पर मगन हूँ मैं ।

> यदि गिलहरी
> करे खड़ खड़ ।
> या कि आए
> तेज अंधड़ ।

नहीं बिखरा,
अधिक निखरा
बस सघन हूँ मैं ।

> नहीं जाती
> हँसी मेरी
> और बाँहें
> कसी मेरी ।

दुपहरिया भर
करूं हर हर
चिर लगन हूँ मैं ।



## दूध सी हँसी

फूलों सा चेहरा
दूध सी हँसी।

प्रीति रस भरे चरण
छूम छनन छन।
हो जैसे राधा का
गीत-आचरण।

गर्वित लय तान में
पंक्ति हो कसी।

आँखों में गर्वीली
रूप कल्पना।
साँवरे कपोलो पर
रंग-अल्पना।

बिजुरी में कजरी की
मूक बेवसी।

लहराते हैं घने
मेघ से सुकेश।
अथिर खड़ा सामने
एक गंध-देश।

गढ़ी हो पुरूरवा ने
नई उर्वशी।



## जादू टोना हुआ

सरगम के स्वर जागे
चाँद खिला धूनों का।

मौसम के आँगन में
गीतों की क्या कमी ?
चुन चुन कर आँचल में
रात हुई रेशमी।

अमलतास ने अपना
खोल दिया झरोखा।

अंगड़ाई लेती है
परियों सी हवाएँ।
यमुना की लहरों सी
अलकों को फैलाए।

टकराता महुए से
चंचलता का झोंका।

इठलाती गंध मगन
रात ढले द्वार पर।
जादू टोना हुआ
तन के कचनार पर।

ठूँठ की उमंगें भी
ढूँढ़ रही है मौका।



## एक घड़ी धूप

एक घडी छाया है
एक घड़ी धूप ।

आती जाती हवा
जिसे खँगालती ।
गंध समझकर अपना
फिर सम्हालती ।

सूखे कुछ टीले, कुछ
भरे भरे कूप ।

बन्द नहीं रख पाती
अपने को दीठ ।
दिख जाती उसे
रंग हीन स्वप्न पीठ ।

बनते मिटते जाने
कितने स्तूप ।

लगता है एक और
अभिशापित यक्ष ।
और कभी अविचल अति
अर्जुन सा दक्ष ।

हैं अबूझ इस मन के
नये नये रूप ।



## कभी पलकों पर न ठहरे

कभी पलकों पर न ठहरे
आज तक मोती।

अतिथि के आते
त्वरित ही चले जाते हैं।
विदा वेला पर न किंचित
कसमसाते है।

अकेले पन की उन्हें
चिन्ता नहीं होती।

थिर रहें जब तक
अथक मन गीत गाते हैं।
सोन मछरी की तरह फिर
फिसल जाते है।

संस्मरण कुछ शेष रहते
सिर्फ खद्योती।

मिलन का हो या विरह का
सघन कोई क्षण।
हुए हिस्सेदार हैं हर बार
बन दर्पण।

उगेंगे, संभावनाएँ
फिर इन्हें बोती।



## दुहराते क्यों नहीं !

बदले हैं गाँव के
आज हवा पानी सब।

हर कांधे लटकती
अभावों की मोटरी।
किसी तरह बची हुई
प्राणों की कोठरी।

बादल हैं चले गये
हाय, राजधानी सब।

लगता, कर दी गई
गाँव बदर कोयलिया।
मुदित नहीं हो पाती
सावन तक में घिया।

गुनहगार लग रहे
वृक्ष स्वाभिमानी सब।

टूट रहा है नाता
रोटी का भाप से।
सभी को शिकायत है
अब अपने आप से।

दुहराते क्यों नहीं
क्रान्ति की कहानी सब ?



## इन्द्रधनुष अब कहाँ !

मैले आकाश में
इन्दधनुष अब कहाँ ?

हवाओं में निरन्तर
गूंज रही चीख है।
परम्परागत जंगल
छोड़ रहा लीक है।

लहरें सब ताल हीन
उनमें लुक अब कहाँ ?

शब्द माँगती फिरती
बगिया की गंध है।
एक साथ रहने का
बिखरा अनुबन्ध है।

धरती को वर्षा का
मिलता सुख अब कहाँ ?

कुहरा उलझा हुआ
घुंघराले बाल सा।
हर जवाब लग रहा
नये उगे सवाल सा।

आँखों में कोई सपना
नियुक्त अब कहाँ ?



## खुशबू है निथर रही

खुशबू है निथर रही,
संध्या मछुआरिन के
गोल गोल जूड़े से ।

लहर लहर नदिया की
गोटे सी है छपी ।
बाहर अक्सर झलके
भीतर की कंप-कपी ।

हवा खुसुर फुसुर करे,
जाने क्यों बार बार
उस पीपल बूढ़े से ।

तुलसी के चौरे पर
दूर कहीं एक दिया ।
लगता है खण्डहर में
जाग रहा जोगिया ।

सन्नाटा अंगना से,
लपक लपक बात करे
उठ उठ बपों मूढे से ।

धुएँ में नहा रही
अलग अलग छानियाँ ।
मन को मथती उनकी
सहज लंतरानियाँ ।

ऐसा माहौल कहो,
वायलिन बजाता सा
मिलता कब ढूंढ़े से ?



## गीत लगी रचने

निपटा कर किसी तरह
दिन भर का काम।
पसर गई अँगना भर
भौजी सी शाम।

ननदी सी हवा गजब
मचा रही शोर।
टोह रही मानो
अपने मन का चोर।

खुल गये अचानक
हर टहनी के पंख।
फूँकने लगे पत्ते
किसी तरह शंख।

चटख उठा बाँस बन
आरती हुई।
रंगोली रचती सी
दिशा छुई-मुई।

गीत लगी रचने
हर साँस उर्वशी
मुखर हुई चाँदनिया
मधुर छन्द सी।



## पहाड़ की ढलान

सूखे मन को देती
अब भी सम्मान।
हरियाली से मढ़ी
पहाड़ की ढलान।

यादों का अपना वह
प्यारा सा देश।
लगता है शेष हुआ
पर अभी अशेष।

सिंदूरी पंखों पर
हवाएँ सवार।
आमंत्रण का इंगित
करें बार बार।

दूध धुले झरनों की
प्यार भरी हांक।
भूलेगा झुरमुट की
कौन ताक झांक ?

ओ रे मन उसी तरफ़
फिर करें प्रयाण।
मौसम दुहराये फिर
अनलिखा गुमान।



## पहाड़ी सुबह का गीत

घूम रही किरण किरण
पर्वतीय शिखरों के आस पास।

झरनों के साथ साथ
इधर उधर डोलती।
अपने मन का मगर
भेद नही खोलती।

आधुनिक हवाओं को
शृङ्गार गीत की नहीं रही तलाश।

टेढ़े मेढ़े मगर
पथरीले रास्ते।
छाँह का अकाल है
मुसाफिर के वास्ते।

सुबह तलहटी प्रसन्न
मगर शाम को लगती है उदास।

पेड़ों का प्रजातंत्र
पानी से हीन है।
मौसम भी क्या करे
बिगड़ चुकी मशीन है।

फूलों के रंग उड़ें
सूरज के घोड़े सब चर जाते हरी घास।



## जीने का अर्थ एक

मांगती हिसाव नहीं
रेत कभी पानी से।

अतीत को न घोखता
कोई भी उसका कण।
काफी उसके लिए
वर्तमान का दर्पण।

मुश्किल, आसान नही
होती हैरानी से।

जीने का अर्थ एक
क्षण प्रतिक्षण जागता।
हर स्थिति को अपने
अनुभव से पागता।

स्वाभिमान ऊँचा होता
अक्सर छानी से।

यद्यपि चट्टानों से
कही अधिक सख्त है।
सामने खड़ा तनकर
गुर्राता वक्त है।

स्वागत उसका श्रम की
सहज धूप-दानी से।



## धूल गाती है भजन

बादलों को देख थर थर
कांपती है धूल हिरनी।

पीठ पीछे खड़ा पर्वत
सामने अतलान्त खाई।
सीलिया मुँह हवाओं ने
अचानक आँखें चुराईं।

धूल गाती है भजन अब
लिए हाथों में सुमरनी।

पास ही जलधार ज्यों
रस-हीन हो कोई रुबाई।
खड़े है लाचार से सब
सिर झुकाए वृक्ष भाई।

भिक्षुणी सी टहनियाँ हैं
पात सारे पीतवर्णी।

छूट किसने दी पता क्या
रोशनी के तश्करों को।
दुखी मौसम क्या करे बस
डाँटता है अनुचरों को।

सौत सी है लड़ रही
हर जगह कथनी और करनी।



## मुखरित होता जीवन

लाल रक्त बह चला
सुबह की धमनियों में।

फूलो के चेहरों पर
सर्व शक्ति मान हँसी।
चंचल से रंगों में
खुशबू की देह कसी।

गीत बजे, वायु की
बिच्छल करधनियो में।

पेड़ों ने पहने जो
वस्त्र, वे सुवासित थे।
डालो पर शहदीले
छत्ते स्थापित थे।

स्वागत का स्वर, नूतन
पत्तों की ध्वनियों में।

उड़ जाती गगन तक
पंख बनी अस्थियाँ।
अँकुराती अधरों पर
मंत्रों की बस्तियाँ।

मुखरित होता जीवन
प्रेमिल टिप्पणियों में।



## सूरज सोता नहीं

चलते ही रहने से बनती पगडंडियाँ,
घोर वियावान में।

पिंजरे के गीतों से
पंछी कब मानता ?
अक्सर है आँखों से
सपना हठ ठानता।

ताकतवर है आँधी तानों अब मुट्ठियाँ,
उसके सम्मान में।

काम नहीं आएँगी
व्यर्थ लन्तरानियाँ।
पौरुष ने कब चाही
कभी मेहरवानियाँ।

होता यह आया है सूरज सोता नहीं,
धूप के मकान में।

रख पाती है कब तक
चट्टानें घेर कर।
झरना तो रख देता
है उन्हें बिखेर कर।

हम हैं संघर्ष रथी चाहिए नहीं हमको,
विजय-गीत दान में।



## सूर्य ने खरीद लिये…

पूछती नदी अपने पानी से क्यों
संवेदन हीन हुए औचक तटबंध ।
परछाई आती, पर
तोड़ती न मौन ।
सुआ रंग सपनों को
समझाए कौन ?

आमों की टहनियाँ उदास है सभी
कोयल है तोड़ चुकी पिछले अनुबंध ।
पेड़ लगें, यात्री को
सिर्फ भूत-प्रेत ।
चुप खाली जेबों को
तरह सभी खेत ।

पोखर मे पानी कम, कमल छिन्न भिन्न
कौन करे ऐसे में चम्पई प्रबन्ध ।
बांसुरी अपाहिज सी
छुई मुई गीत ।
धुँधलाए रिश्तों के
अक्षर मन जीत ।

सूखी खपरैलों पर कुम्हड़े की बेल
सूर्य ने खरीद लिए मीठे सब छन्द ।



## तेवर धूप के

सहे नहीं जाते हैं।
अब तेवर धूप के।

सपनों के धान पान
अभी तक पके नहीं।
मछलियों की भीड़ में
जाल भी थके नहीं।

खूब खूब तप रहे
संगमर्मर धूप के।

पवन से न कर पाई
बाँसुरिया नोंक झोंक।
गीतों के पंखों पर
लगी कहाँ रोक टोक।

ओस को खरोंच रहे
हैं अनुचर धूप के।

सरसों की सूनी
रसहीन राजधानी है।
मौसम के नाम उसे
चिट्ठी लिखवानी है।

सकुचाए वृक्ष लगें
ज्यो देवर धूप के।



## वरस बाद लौटा है

बंजारा फागुन यह मंत्र बिद्ध सा
वरस बाद लौटा है अब अपने गाँव।

इतराती फिरती
जिनगानी खुशहाल।
लाया है गठरी भर
रंग और गुलाल।

गालों पर लाली, मुँह में आई जीभ
आँगन की धूप लगे मिठ बोली छाँव।

मन मगन खुली तमाम
पूर्व ग्रंथियाँ।
एक साथ बजी खूब
हृदय तंत्रियाँ।

समय को चुनौती है सम्हल कर चले
जितने भी खेलेगा, हारेगा दाँव।

मन के इस आँगन की
अब ऊँची शान।
खुशियों के क्या कहने
भेड़िया धसान।

ड्योढ़ी पर है ऐपन आँकती हवा
कौन सुने बिरहा के कौए की काँव।



## धूप में

नदी हुई कुहरे से बाहर
मुस्काती है नाव धूप में।

हाथों में हँसिए ले लेकर
शुरू हो गई आवाजाही।
ठौर ठौर पर शीश झुकाते
सुमन सलोने गंध सुराही।

आलस से है लगा उबरने
धीरे धीरे गाँव धूप में।

रहे ठिठुरते बरगद पीपल
भोर हुई है, तब तन पाये।
बतियाती खेतों में सरसों
मेड़ों पर अरहर मुस्काये।

लुका-छिपी का खेल हो रहा
पगडंडी पर छाँव-धूप मे।

लेने लगे खूब अंगड़ाई
मैले गूँगे-बहरे दर्पण।
गली मोहल्ले चौबारों पर
सन्नाटे ने किया समर्पण।

हवा भुनाती एक एक से
पिछले सारे दाँव धूप में।



## रंग कहाँ बैठे ?

घूम घामकर फिर लौटे हैं
फगुनौटी के दिन ।

चेहरों पर है पड़ा अभी तक
प्रश्नों का झूला ।
भीतर से आहत लगता है
मौसम अनफूला ।

सूनी आँखों में कब ठहरे
कजरौटी के दिन ?

मन का आँगन लगता है
सूनी बँसवारी सा ।
पलकों को लगता हर सपना
भारी भारी सा

जल्दी-जल्दी बुढा रहे
कंघी-चोटी के दिन ।

मैला कुरता, मैली बंडी
रंग कहाँ बैठे ?
पहले से ही जहाँ नियम हों
शोषण के ऐंठे ।

जल्दी बहुरें, चिन्ता है
सूखी रोटी के दिन ।



## फागुन आता है

तन-मन-जीवन में कुलांचता,
नहीं अघाता है।
फागुन आता है।
इन्द्रधनुष अँकुराने लगते
शांत कपोलों पर
जड़ से जमी दृष्टियाँ सारी
दृश्य हिंडोलों पर।
खुशबू के खत फूल-डाँकिया,
घर पहुँचाता है।
फागुन आता है।
चौकन्ने सब रंग आज
उड़ते चतुराई से।
झर झर झरते गीत
तितलियों की परछाई से।
मनुहारी का शिलाखण्ड
गल कर बह जाता है।
फागुन आता है।
इच्छाओं का आँगन लगता
ज्यों कोई जंगल।
मुट्ठी में भर कर गुलाल
हो जाता है चंचल।
नये सिरे से खुल जाता
हर मन का खाता है।
फागुन आता है।



## आँगन से जरा आगे बढ़ो

उठो, आँगन से जरा आगे बढ़ो
हर कदम पर चुप्पियों को तोड़ना है।

नदी सोई है
इसी से लहर चुप है।
हमीं निष्क्रिय हैं
इसी से शहर चुप है।

पूछती हैं कमर में खोंसी खुरपियाँ
रोशनी को, फसल को कब गोड़ना है ?

हँसे कोई पेड़
जंगल हँस पड़ेगा।
कटेगा वट वृक्ष
तिनके से अड़ेगा।

यात्रा के संशयों को पचा डालो
सिर्फ अब मजबूत कंधे जोड़ना है।

कुछ नहीं है जूझता
आदिम नशा है।
कसौटी पर सभी को
इसने कसा है।

धुएँ ने बहका रखा है रथ हमारा
उसे सूरज की गली में मोड़ना है।



## किरण नहाना भूल गई है

सुबह हमारी बाँध रखी
उसने अपने रूमालों में।

किरण नहाना भूल गई है
महानदी के घाट पर।
धूप बहुत बीमार लग रही
पड़ी हुई है खाट पर।

पहले जैसा नेह न बाकी
है महमान उजालों में।

अभिनन्दन-पत्रों से बादल
दूर-दूर तक बिखरे हैं।
हरे भरे वन वृक्ष विवश हो
मूड़ मुड़ाकर निखरे हैं।

दुष्ट हवाओं का हर झोंका
छिपा हुआ मृग छालों में।

अपनी मीठी मुस्कानों की
नदी, इबारत भूल गई।
सरसों को बेदखल किया,
है झरबेरी फूल गई।

हँसती है अमराई लेकिन
गढ़े न पड़ते गालों में।



## दिन पके हुए

पपीते की तरह हैं दिन पके हुए।
पहले की तरह नहीं
धूप नाचती।
मैले कपड़े लत्ते
हवा कांचती।
नजर नहीं आते भौरे थके हुए।
अँबिया ने शुरू किया
अभी झांकना।
पत्तों को है पसन्द
गप्प हांकना।
ताल तलैया पुरइन से ढँके हुए।
आंखों में अभी कहाँ
चढ़ी खुमारी।
मेड़ों पर यात्राएँ
फिर भी जारी।
अधरों पर गीत, गंध में छके हुए।



## अम्मा जैसी रात है

कीर्तन करती अम्मा जैसी रात है।

जंगल है खामोश कि मानो
पावन पूजा घर।
घण्टी सा रणकार कर रहे
है झींगुर के स्वर।

निंदियाये बच्चों से अलसित पात हैं।

चाँद कि जैसे कोई
थकहारी कंदील।
और चाँदनी यहाँ वहाँ तक
मानों बिखरी खील।

ज्यों बापू खर्राटे लेते, वैसे लगे प्रपात हैं।

चरणोदक सी शांत पड़ी है
शीतल सरिता धार।
सहज सुमरनी के मनकों से
सरकें स्वप्न हजार।

बन्द हवाओं के सारे उत्पात हैं।



## ठिठक गई पशुता

अक्सर यह आदमी
अपने ही जीवन में
रहा गैर हाजिर है।

जो भी सोचा करता
वैसा होता नहीं।
रक्तिम घटनाओं पर
भी यह रोता नहीं।

लगता है मरुथल में
जाने कब से भटका
एक यह मुसाफिर है।

नफरत फैलाता है
रोज यह सभाओं में।
युद्ध का नशा फैला
है इसके पांवों में।

चकित है दिशा-दिशा
पता चले, मनुष्य क्या
चाह रहा आखिर है ?

अब होने लगी है
हत्याएँ कलात्मक।
नाटक का उपसंहार
पता नहीं हो कब तक ?

ठिठक गई है पशुता
देखकर चरित्रहीन
सुंदर सा मंदिर है।



## कल के आने वाले बादल

नहीं दीखते दूर दूर तक
पानी लाने वाले बादल।

पत्तों की चल रही हवा से
क्षण प्रतिक्षण है कानाफूसी
माँग रही हँसने गाने का
खुशबू अपना हक मौरूसी।

आज अभी तक पहुँच न पाए
कल के आने वाले बादल।

यद्यपि पेड़ बहुत जंगल में
कोई नहीं बजाता ताली।
बाहर-भीतर सन्नाटा है
क्या देखे दर्पण हरियाली।

लगता है परदेश जा बसे
मन को भाने वाले बादल।

कौन बनाये अभी घोंसला
सोच रहे है कुछ बनपाँखी।
इन्द्रधनुष आमंत्रित करती
टहनी पर कोयल अमुवा की।

आते होंगे जादूगर से
क्षण में छाने वाले बादल।



## चुप लगे थे तुम

प्यार की वह कुकुमी वेला
घोलकर भी चुप लगे थे तुम।

शब्द बन पाए न
कोई छन्द।

अनलिखा ही
रह गया अनुबंध।

हृदय का भूगोल पलकों में
खोलकर भी चुप लगे थे तुम।

कपोलों की
सतसई पढ़कर।

आ गये थे
सूर्य से बढ़कर।

जन्म भर का मधु उसांसों में
घोलकर भी चुप लगे थे तुम।

'कनुप्रिया'-तुमने
पुकारा था।

समय को यह
श्रेय सारा था।

हलचलों ने किया जादू
डोलकर भी चुप लगे थे तुम।



## जंगल में

जंगल में
खाली जेबों का सा सन्नाटा है।

खोई-खोई
गरम हवाएँ
पेड़ खड़े हैं
सब मुँह बाए
पगडंडी की
देह नोचता कोई काँटा है।

बड़े ठाट से
सूरज आकर
साथ ले गया
नदी लुभाकर
जाते जाते
पर्वत को भी उसने डाँटा है।

कोई हँसा न
कोई खाँसा
जला सभी कुछ
हिरोशिमा सा
नहीं अभी कुछ
चिड़ियों ने बच्चों को बाँटा है।



## कंधे झुके हुए

पुरखों का यह गाँव
गाँव के कंधे झुके हुए।

चेहरों पर है आँखें मानो
गहरे तहखाने।
मन है धुंधलाए शीशे सा
किसको पहचाने ?

स्वाभिमान के सभी निशाने
है बेतुके हुए।

प्रतिदिन उठता ही जाता है
ऊँचा परकोटा।
मनुष्यता का किन्तु दिखाई
देता है टोटा।

क्रूर कंकड़ों के मेले में
चाँवल रुके हुए।

दीवारों पर नहीं दीखती
सुख की तारीखें।
आवाजों मे शेष रही
चमगादड़ की चीखें।

शब्द, समर्पण संकल्पों के
सारे चुके हुए।



## सावन के झोंके

दीन दुखी जो आज अभी
उनके प्रतिनिधि हो के ।
संसद की सेवा में आए
सावन के झोंके ।

घूम-घूम गलियों-गाँवों में
धूल उड़ाते हैं ।
मगर अकाल कथाएँ सुनकर
ही कतराते हैं ।

रोब दाब से भुना रहे हैं
ये भविष्य अपना
भरे हुए इनकी जेबों में
नये नये धोखे ।

मालिक बन बैठे मौसम के
अवसर पाते ही ।
साहुकार सी उम्र गुजरती
व्याज कमाते ही ।

बस अपने स्वारथ को ही
सीमा में घिरे रहे ।
कोई फूले-फले, इन्होंने
कहाँ दिये मौके ?

बादल चाकर हुए, बिजुरिया
भी अनुचरी हुई ।
तग आ गई दशो-दिशाएँ
रिस से भरी हुई ।

बाहर भीतर अलग-अलग कुछ
इनकी दुनिया है
इनके मारे सच कैसे हो
सपने कलियों के ।



## तमीज कहाँ ?

पैदा करते अन्न रात-दिन खेतों में खपकर,
लेकिन है खाने की उनको अभी तमीज कहाँ ?
उखड़ गया गन्ना, पाए
अमरूद कहाँ पकने ?
मिली न कोई चीज
बेचारे बबलू को चखने ।
जिनके आँगन में कपास के ढेर एक से एक
लेकिन उनके तन पर दिखती फटी कमीज कहाँ ?
जमींदार सरपंच, शेष सब
चाकू लगते हैं ।
अफसर जो भी आते जाते
डाकू लगते हैं ।
धीरज के प्रतिमान बने दुख पी जाते हैं ये
असंतोष की इनने है लाँघी दहलीज कहाँ ?
लोग लगे हैं भाषण में या
फिर अखबारों में ।
लेकिन गाँव फँसे शोषण के
अत्याचारों में ।
बनती हैं जो भी चीजें, उनकी ही मेहनत से
रह पाती वह, पल भर को भी उनकी चीज कहाँ ?
कहाँ मर गया मँगतू, कोई
पता नहीं चलता ?
रात अंधेरी फगनी के घर
दिया नहीं जलता ।
धीरे-धीरे समझ रहे है लोग करिश्में को
आखिर हैं इस चमत्कार के सचमुच बीज कहाँ ?



## तन्वंगी यह नदी-धार

पर्वत-भैया अभी खेत से
लौटे, खड़े हुए
तन्वंगी यह नदी धार
भौजी सी भली लगे।

वार-बार लोनी लहरों की
चूनर सरकाए।
नई उमर का गीत सलोना
बस, गाती जाए।

क्षण भर गहन गंभीर, दूसरे
क्षण मनचली लगे।

बहती जाए देह कि जैसे
अंतहीन आंधी।
पीछे-पीछे दौड़ लगाती
हवा बनी बांदी।

प्यासे तटबंधों को तो
मिसरी की डली लगे।

जहाँ मिले पौधे शरारती
खूब गये डाँटे।
मीठे चुम्बन हरियाली को
किन्तु कई बाँटे।

तनिक परस ही पेड़ों को
सुख की अंजली लगे।

●

## शानदार अभिनंदन

सवाल ही कहाँ रहा
घोड़े की घास का।

बंदूकें बिछी हुई
आज तो जमीन पर।
भरोसा मदारी को
रहा नहीं बीन पर।

पाँव से अधिक महत्व
सुनते हैं फाँस का।

चोर-सिपाही दोनों
भेदभाव भूल गये।
हवा की कसम खाकर
गुब्बारे फूल गये।

ढोंग किये बैठे है
बगुले, सन्यास का।

फूट रहे फब्बारे
जगह जगह खून के।
दागदार हो चुके
कपड़े कानून के।

देखते रहो केवल
नाटक सत्रास का



## मैनेजर बदल गया

लगता है इस मौसम का
मैनेजर बदल गया।
फल-पात लग रहे नये सब
खुलकर महक रहे।
पेड़ों पर बैठे समूह में
पंछी चहक रहे।
पीले पत्तों के जीवन का
चक्कर बदल गया।
सभ्य हो गई हवा, किसी को
त्रास नहीं देती।
शांत किन्तु उल्लसित दीखती
सरसों की खेती।
धूप और छाया का अक्षर-
अक्षर बदल गया।
भंग यूनियन हुई अचानक
तितली भौंरों की।
शिथिल हो गई गतिविधियाँ
दुर्दान्त झकोरों की।
आसमान का भी चरित्र
यायावर बदल गया।



## शानदार अभिनंदन

सवाल ही कहाँ रहा
घोड़े की घास का।

बंदूकें बिछी हुईं
आज तो जमीन पर।
भरोसा मदारी को
रहा नहीं बीन पर।

पाँव से अधिक महत्व
सुनते हैं फाँस का।

चोर-सिपाही दोनों
भेदभाव भूल गये।
हवा की कसम खाकर
गुब्बारे फूल गये।

ढोंग किये बैठे हैं
बगुले, सन्यास का।

फूट रहे फव्वारे
जगह जगह खून के।
दागदार हो चुके
कपड़े कानून के।

देखते रहो केवल
नाटक संत्रास का



## कहीं प्रबंध नहीं

सोच रही है नन्ही चिड़िया
कैसे नीड़ बने ?

जंगल को लगता है, उसके
दिन हैं बहुत बुरे।
हरियाली का हुआ अपहरण
शायद ही बहुरे ।

औचक किसी पेड़ पर जाने
कब बंदूक तने ?

नैतिकता से किसी गंध का
अब अनुबंध नहीं।
फूल पात मुस्काएँ ऐसा
कहीं प्रबंध नहीं ।

हाथ हवाओं में हिलते हैं
अक्सर रक्त सने।

घूम रहे है सतत लुटेरे
बिलकुल बौराए।
दंग खड़े टेसू को देखें
महुआ मुँह बाए ।

पुरातत्व की चीज हो गए
झुरमुट घने घने।



## मोह गलत है

सारी दुनिया यही चाहती
रोक लगे अब हथियारों पर।

राष्ट्र संघ जैसा दर्शक भी
देख देख कर हार गया है।
स्वतंत्रता की हर इच्छा को
मानों पाला मार गया है।

कहो, करेगा कौन भरोसा
विश्व शांति के अब नारों पर।

सुन लो साँसों के सौदागर
क्रान्ति-पुत्र अब जाग रहे है।
एटम नहीं, परिश्रम करके
सिर्फ रोटियाँ माँग रहे हैं।

विवश मत करो, चल सकते हम
कुरबानी के अंगारों पर ।

ओ हत्यारों ! मानवता को
सरेआम नीलाम मत करो।
श्रम-प्रधान बीसवी सदी को
जान बूझ बदनाम मत करो।

मोह गलत है, टिका रहेगा
कोई कब तक मीनारों पर।



## मुट्ठी भर गेहूँ

भरे हुए गोदामों पर हैं चूहे काबिज
अपने पास नहीं है एक कनस्तर गेहूँ।
प्रगतिशील नीतियाँ छप रहीं
अखबारों में
सूरज के बिकने की चर्चा
होती रहती अँधियारों में।
मिलती है नहरें नक्शें पर, लेकिन गायब
है राशन की दूकानों से अक्सर गेहूँ।
राहत शब्द निरर्थक है अब
या फिर बातों का बंडल है।
कल महान था वही आदमी
सिर्फ रह गया स्कैण्डल है।
आजादी यह नहीं माँगती चाँदी सोना
उसे चाहिए मेहनत का मुट्ठी भर गेहूँ।
प्रतिदिन जीवन मूल्यों में अब
आती जाती रोज गिरावट।
है रुखसत ईमान हो रहा
नहीं किसी में भी घबराहट।
लाठी गोली अश्रु गैस की स्पर्धा में
रेफरी शिप कर रहे विवश हैं मिस्टर गेहूँ।



## हमको है स्वीकार चुनौती

आगे बढ़कर रोकें साथी।
होड़ लगी है रक्त पात की।
जहाँ जहाँ तक नजरें जाती
सिर्फ बिच्छुओं की घाटी है।
खत्म न होता आदिम पतझर
कैसी काली परिपाटी है।
चलो खूब धज्जियाँ उड़ाएँ
इस जहरीले कीर्तिमान की।
इन्तजार के अंगारों में
झुलस चुकी चाँदनी-कल्पना।
होती जाती नित्य अगोचर
इच्छाओं की सुघड़ अल्पना।
कर दें हम धरती की खातिर
ऐसी तैसी आसमान की।
ऋतु का अंत निकट है जानो
शुष्क नहीं होगा अब सावन।
पीले पत्ते हरे हो रहे
ज्वार उठ रहा है मन भावन।
हमको है स्वीकार चुनौती
विप्लवधर्मी इम्तहान की।
हमें अचानक शांत देखकर
हँसता है हर कुआँ अँधेरा।
ताकत हो जिसमें जलने की
उसके लिए न दूर सवेरा।
गोल गोल घूमेंगे कब तक
उँगली पकड़े वर्तमान की।



## सेतु बंध कहाँ गए

रिश्तों के सूने तट पूछ रहे नदियों से
कल तक जो जीवित थे सेतु-बंध कहाँ गये ?

कोई ईमान अब
पसीने से तर नहीं।
सत्य की वसीयत की
किसी को खबर नहीं।

सागर से लहरों की आज भी शिकायत है
बूढ़े सुकरात से अमर-छंद कहाँ गये ?

अंधी हर खिड़की है
दरवाजे बहरे हैं।
शहादत पर स्वार्थ के
दाग बड़े गहरे हैं।

पंखुरियाँ फूलों की ढूंढ़ रही बगिया में,
खुशबू के मन भावन बाजू बंद कहाँ गये ?

निरन्तर अराजक यह
भीड़ नहीं टूटती।
फड़ फड़ा रही दिशा
माथा है कूटती।

सूर्य की तरह सबको धरती से जोड़ते
महज पारदर्शक अब वे निबंध कहाँ गये ?



## जंगल में फागुन

बिगड़ चुका है सारे
जंगल का तंत्र।
व्यर्थ हो रहे टेसू-
गुनिया के मंत्र।

गूलर का पेड़ सहे
महुए की मार।
भेलवा लगे कल से
ज्यादा हुशियार।

चिमट रहा है धौंरा
कुमही के गाल।
मुंह झौंसे तेंदू के
अजब-गजब हाल।

गल बहियाँ डाले है
बांस और बबूल।
फुगड़ी सी खेल रही
जगह जगह धूल।

हर्रा-बेहरा, दोनों
क्यों आएँ बाज?
धूम मची जंगल मे
फागुन की आज।



## सांस बजे बँसुरी सी

नारंगी चूनर सी
फागुन की भोर।
घूम रही दीठ
मिले नहीं ओर-छोर।

टहनी-टहनी पर है
बौर रहे झूम।
अवसर इस मौके पर
गाने की धूम।

मुच मुचही फगनी पर
फगुवा का जोर।

देख रही है भउजी
ननदी के ठाट।
टिकुली ले लौटी
कर आई हाट।

करता तन पिंजरे में
मन सुअना शोर।

बाहर से कहीं अधिक
भीतर हैं रंग।
सांस बजे बँसुरी सी
धड़कने मृदंग।

लूट रहा है सरवस
सुधियों का चोर।



## बाढ़ के बाद

अभी नहाए हैं कोहरे में
बैठे हैं अब धूप ओढ़कर।

घूम रही है अब भी पीड़ा
आँखों के उत्तर प्रदेश में।
इन्द्रधनुष लाचार हुआ है
कुंठाओं के उपनिवेश में।

जाने आँसू कब तक लौटें
निकले पिंजरा अभी तोड़कर।

बादल मीठा बतियाते थे
लेकिन उनने फसल चुराली।
असमय ही बूढ़ी लगती है
धरती की बेटी हरियाली।

पंछी फिर से साँस ले रहे
अपने पंखों को निचोड़कर।

खोज रही अबाबील अब
शायद वह आकाश पुराना।
हवा पूछती है पेड़ों से
कब होगा सूरज का आना।

कायर ही जाया करते हैं
अपना प्यारा गाँव छोड़कर।



## सूर्य नहीं डूबा

भीतर बाहर मची फगुनहट
प्राण बहुत हरषे।
मन खँगालकर कोई झोंका
आया, अभी गया।
ज़ुल्मी हाथों को गालों पर
आती नहीं दया।
माँदल से मिल रही बाँसुरी
लौटी नैहर से।
इन्द्रधनुप आँखों-आँखों में
कई कई जनमे।
लगता, गीतों का जुलूस
निकला पलाश वन में।
रंग अबीर हवा के पीछे
घूमें अनुचर से।
बस्ती बस्ती कमल हो गई
सूर्य नही डूबा।
बरस बरस कर कोई भी तो
रंग नही ऊबा।
मीरा सी दीवानी खुशबू
निकल पड़ी घर से।



## ताल ठोंक कर

बार बार आती है आँधी
ताल ठोंक कर पेड़ खड़े हैं।

रह रहकर आवारा बादल
खूब-दिखाते खेल-तमाशे।
बस, यूँ ही हुड़दंग मचाते
बजा बजा कर ढोलक ताशे।

हवा मारती चाबुक उनको
हँस देते हैं, चूंकि बड़े है।

सूखे पत्ते फैले-पसरे
दूर नदी की कनपटियों तक।
पाल दार नावों को गुस्सा
कभी कभी आ जाता औचक।

किन्तु रेत के माथे पर ये
शीश फूल की तरह जड़े हैं।

आ जाती है बाढ़ अचानक
कंधों पर ये कम्बल डाले।
नाम नही लेते झुकने का
भारी भरकम पगड़ी वाले।

इनकी जड़े बहुत हैं गहरी
इसीलिए ये निडर अये है।



## उस दिन से पेड़ वह

अम्मा की आंखों में झूल रहा आज भी,
आंगन में लहराता एक पेड़ आम का।
आँखों में सबकी वह
स्वप्न था हरा भरा।
अभावों की दुनिया का
एक अदद आसरा।
कल्प वृक्ष ऐसा इस गाँव में न था कोई
दे सकता था जवाब सूर्य के सलाम का।
जंगल से आते थे
अक्सर उड़कर तोते।
करते संवाद खूब
फुरसत में जब होते।
खाट डली रहती थी, छाया में दादा की
लेते रहते हिसाब सुबह और शाम का।
रुला दिया दधीचि को
लेकिन बँटवारे ने।
बीन लिये जुगनू सब
हँसकर अँधियारे ने।
जिस दिन दीवार में, चिन दिया गया उसको,
उस दिन से पेड़ वह रहीम का न राम का।



## भोपाल की सुबह

सुबह बड़ी ढीठ लगी
मुझको भोपाल की ।
पल भर फुरसत चूंकि
मिली उसे चौके से ।
इसीलिए झांक रही
एक टक झरोखे से ।

अधरों पर कहीं नहीं
स्मित की पालकी ।
पहन धूप की मैक्सी
शिथिल नरम अंगों में ।
पिघल रही बर्फ सी
कई कई रगों में ।

बिखर रही गंध ज्यों
बुझी हुई मशाल सी ।
चूंकि राजधानी है
इसीलिए चर्चित है ।
पता नही अश्रुहीन
यह किसे समर्पित है ।

फिकर नहीं जिसे और
किसी हाल चाल की ।



## अम्मा बीमार है

सूरज तुम मत डूबो, आज रात
अम्मा बीमार है।
ढिबरी तक बुझ गई
थोड़ा था घासलेट।
चाँवल के माड़ को
तरसेगा पुनः पेट।

नंगे कर्तव्य को दुलार रहा
गूंगा अधिकार है।

कफन बड़ा महँगा है
आत्मा पुकारेगी।
ठंडी दुर्दान्त हवा
मूसल से मारेगी।

कस्बे में एक अदद हृदय हीन
ढीठ साहुकार है।

बेचने पड़ेंगे कुछ
टूटे-फूटे बर्तन।
कौन रखेगा गिरवी
गिलट के घिसे कंगन।

चन्द्रमा करेगा क्या, वह भी तो
सरमायादार है।
सूरज तुम मत डूबो, आज रात
अम्मा बीमार है।



## कोई चिड़िया

मीलों लम्बा जंगल फैला
नहीं चीखती कोई चिड़िया।

घिरी अविश्वासों से अनुक्षण
पूजा करती है गुलेल की।
करती नहीं कभी भी चिन्ता
किसी तरह के तालमेल की।
सन्नाटे का ऐसा भी क्या
बाहर भीतर मोह जड़ा है।
अँधियारा भविष्य के आगे
बस, त्रिशूल की तरह गड़ा है।

पंख फुलाए किसी डाल पर
नही दीखती कोई चिड़िया।

पता लगाया जा सकता है
घायल किसने कर दी पाँखें।
किन हाथों में थमी हुई हैं
आज अभी तक गर्म सलाखें।
बाँस-बबूल क्षुब्ध लगते हैं
तिनके तक उतावले पल-छिन।
बहुत इशारे उथल पुथल के
करती रोज हवाएँ, लेकिन—

बहेलियों को आँख दिखाना
नहीं सीखती कोई चिड़िया।



## हो सकता है···

छोटी मोटी कोई घटना
जाने कब अचरज बन जाए।

सच है. बोतल में बंदी है
जिन्न, मगर कमजोर नहीं है।
चुप रहती है चिनगारी भी
उसमें होता शोर नहीं है।

क्या जाने, नन्हा सा जुगनू
तड़प उठे, सूरज बन जाए।

रोज छप रहा अखबारों में
भूत और प्रेतों का बढ़ना।
सीख रही हैं. रेत घरों में
अभी मछलियां, खूब झगड़ना।

नही असम्भव, ऊँचे पर्वत
निर्जन पथ की रज बन जाएँ।

जंगल में है बहस चल रही
इमारतों के सम्बन्धों की।
पेड़ कहे रहे, नहीं जरूरत
उन्हें किराये के कंधों की।

उनमें से ही कोई तिनका
हो सकता है, ध्वज बन जाए।



## सूरत बदलेगी खँडहर की

फटी कमीज बता देती है
कैसी हालत होगी घर की।

रात और दिन लगते हो बस
तुम आटोमेटिक मशीन से।
दिखते हो तुम अभी प्रकाशित
श्रम सीकर की बुलेटीन से।

फिकर करेगा कौन तुम्हारे
टूटे हुए जीर्ण छप्पर की।

खुशियों का हकदार आज भी
तकलीफों के बीच खड़ा है।
इसीलिए यह देश लग रहा
मूर्दों का म्युजियम बड़ा है।

जिसकी काली दीवारों पर
छिपकलियाँ है संगमर्मर की।

यद्यपि खाली एक कटोरा
आज बचा है पास तुम्हारे।
माटी इसका साक्ष्य दे रही
तुमने नहीं हौसले हारे।

आखिर आज नहीं तो कल तक
सूरत बदलेगी खँडहर की।



## हो सकता है···

छोटी मोटी कोई घटना
जाने कब अचरज बन जाए।

सच है. बोतल में बंदी है
जिन्न, मगर कमजोर नहीं है।
चुप रहती है चिनगारी भी
उसमें होता शोर नहीं है।

क्या जाने, नन्हा सा जुगनू
तड़प उठे, सूरज बन जाए।

रोज छप रहा अखबारों में
भूत और प्रेतों का बढ़ना।
सीख रही हैं. रेत घरों में
अभी मछलियां, खूब झगड़ना।

नहीं असम्भव, ऊंचे पर्वत
निर्जन पथ की रज बन जाएँ।

जंगल में है बहस चल रही
इमारतों के सम्बन्धों की।
पेड़ कहे रहे, नहीं जरूरत
उन्हें किराये के कंधों की।

उनमें से ही कोई तिनका
हो सकता है, ध्वज बन जाए।



## धूप हिरनिया

डरी हुई है मई जून की
अमराई में धूप-हिरनिया।

आँखों में बहता सन्नाटा
कानों में पिघला कोलाहल।
हारे-थके हुए से कँगना
नूपुर-नूपुर बिखरी पायल।

उजले सपनों का औचक ही
होता जाता रूप जमुनिया।

बेचैनी कर रही जुगाली
ताने मार रही है पछुआ।
जाने क्यों जमकर बैठा है
जाल लिए मौसम का मछुआ।

घेर घारकर सूखे पत्ते
बैठे हैं ज्यों ओझा-गुनिया।

यद्यपि कोयल बजा रही है
लगातार धीरज की बीना।
लेकिन नहीं चाहता वन में
मन मसोस कर कोई जीना।

हवा दुखी है, संग न उसके
कोई आज रहा किरतनिया।



## शाम पके बेर सी

साँसें दिप दिपा उठीं
प्रफुल्लित कनेर सी।
टपक गई आँगन में
शाम पके बेर सी।

बजती है हवाएँ
पखावज सी झमाझम।
तुलसी के चौरे पर
दीप अकेला अनुपम।

अँजुरी से रोशनी
उलीच रहा ढेर सी।
टपक गई आँगन में
शाम पके बेर सी।

धमकी देता रहा
घुड़सवार अँधियारा।
तारों के नारों से
गूँजा हर गलियारा।

उदासियाँ खत्म हुईं
नसीबों के फेर सी।
टपक गई आँगन में
शाम पके बेर सी।



## तिनकों की बिसात

बाँस वन क्यों जला
उफन उठे फूल पात ।

पिघल गया सपनों का
सोन फूल डाल पर
गुस्से का मूलधन
यक-ब-यक निकालकर ।

बाँट रहा सबको
बारूद, चाँद आज रात ।

मोंगरा खिले न खिले
किसको परवाह है ।
अँजुरी भर अंगारे
एक यही चाह है ।

हल्दी के साथ मनें
मिर्च की सुहागरात ।

रेतीले टीलों पर
लहर मचल जाएगी ।
नये शब्द नये अर्थ
उक्ति बदल जाएगी ।

होती है तिनकों की
कभी कभी तो बिसात ।



## शब्द न जाने

जब कुछ मिलने की आशा थी
तब खोने की घड़ी आ गई।

आँखों के है संग आज भी
केवल एक आईना अंधा।
झुका हुआ है मायूसी से
स्वाभिमान का दायाँ कंधा।

पाँवों में जब नया जोश था
हाथों में हथकड़ी आ गई।

शब्द न जाने कहाँ छिप गये
जो अन्तर की चुप्पी बींधे।
भटक रहे है ठोकर खाते
शहर दर शहर अर्थ उनींदे।

सभी रास्ते बंद हो गये
बेमौसम की झड़ी आ गई।

छेड़ रही मानव मूल्यों को
कुल विहीन छोटी चिनगारी।
पहली बार लगी बगिया को
पेड़ों से परछाई भारी।

हरियाली की काट छाँट से
तिनकों में हड़बड़ी आ गई।



## दरपन की कब्र में

पूछो मत आज भी
पिघल रही हैं सड़कें।

बारिस तक में नदिया
बाँसुरी बनी नहीं।
इन्द्रधनुष जैसी
सुकुमार सनसनी नदी।

पोलियो ग्रसित लगता
है सूरज भी तड़के।

दरपन की कब्र में
बिम्ब बहुत सोये हैं।
केंचुली उतार, साँप
लगातार रोए हैं।

बादल तब नाचें क्यों
बिजली अब क्यों कड़के।

डाँटे अब किस तरह
मूक अपेक्षाओं को।
लहरों से काटकर
कहाँ रखें नावों को।

हवा हो गई ठंडी
खुद से ही लड़-लड़ के।



## कौतूहल धूप का

मुक्ति के प्रसंग का
यह कैसा व्याकरण ?

कविता के पंखों को
रोज कतर जाता है।
और कटे पंखों से
नाव जो बनाता है।

रेत में फँसा हुआ
छीजता समीकरण।

मौसम के दिशाहीन
सारे ही इशारे।
कौतूहल धूप का
भटक रहा मन मारे।

सन्नाटा बेच रहा
सुबह के अलंकरण।

ऋतु को घेरे बैठे
परम्परा के तिनके।
सिरहाने बैठा है
अन्तहीन भ्रम जिनके।

जँचता ही नहीं, किसी
मुक्तक का आचरण ?



## शहर मर गया

चलो मनाएँ शोक साथियों !
आज हमारा शहर मर गया ।

मौसम उखड़ रहा है देखो
रूठी सी लगती पुरवाई ।
आँखों में काजल उदास है
हिचकी लेती है शहनाई ।

सपनों की चंचल सांसों में
जैसे कोई जहर भर गया ।

खाली नहीं दीखता कोई
लाश ढो रहे सारे कंधे ।
दरपन की दूकान खोलकर
बैठे हैं सजधज कर अंधे ।

अँधियारे की धमकी सुनकर
स्वाभिमान का सूर्य झर गया ।

शब्द न कोई शेष रह गया
परिभाषाओं के शरीर पर ।
अर्थ छिपाए मुँह बैठा है
परम्पराओं की लकीर पर ।

जहाँ आदमी सुबह निडर था
मगर साँझ तक वही डर गया ।



## बैठा है आदमी

फायदा नहीं ज्यादा
पूछताछ करने से
माँस की दूकान बना
बैठा है आदमी।

आँसू-कण पीस रही
आँखों की चक्कियाँ
मुस्कानों पर पहरा
देती हैं मक्खियाँ।
बिलबिला रहे जिसकी
बातों के केंचुए
घृणा की खदान बना
बैठा है आदमी।

तसवीरें समय की
इसी ने खराब कीं।
पूछो तो खाता है
कसम यह शराब की।
पीता है प्याऊ से
छक कर यह रोज लहू
फिर भी शैतान बना
बैठा है आदमी।

हाथ में थमी हुई
तराजू है धोखे की।
बात करे कौन अब
भविष्य के झरोखे की।
फिर भी अँधियारे की
अनबूझी पीठ पर
बिलकुल अनजान बना
बैठा है आदमी।



## जमीन पर जमीन के खिलाफ

अनुभव यह अच्छा कुछ नहीं बंधु
शून्य में सहज तिरे तिरे फिरो।

देना ही चाहिए जवाब हमें
मौसम के आवश्यक खतों के।
क्या न हुआ करते हैं सोने में
सैलानी ख्वाब जरूरतों के?

औरों के लिए बनो आईना
दल दल में किन्तु स्वयं ही गिरो।

देखो किस बेचारी हसरत की
आँखों में महीने चढ़े हुए।
यह यकीन बाजारू हो बैठा
पर झंडे बेशरम गड़े हुए।

अब जमीन पर जमीन के खिलाफ
चुप भी तो रहो तनिक मुखबिरों!

पहचानो अधरों पर पानी है
यात्राएँ बँधी हुई पाँव में।
खिलौनों से खेल रही भूख है
शोर मच रहा सारे गाँव में।

आबरू मेहनत की मुट्ठी में
भाग रहे हो कहाँ मुसाफिरों।



## रेत के बहीखाते

परिणति से भी दहशत
होती है कभी कभी।

सुबह सुबह लगते हैं
समाचार अलोने।
अब हम कहते नहीं
सपनों को सलोने।

दुख का कारण आदत
होती है कभी कभी।

चढ़ने को चढ़ जाता
व्यक्ति है खराद पर।
मर मिटता है लेकिन
लिप्सा के स्वाद पर।

विश्वासों की आफत
होती है कभी कभी।

अपनी ही गंध के
खिलाफ फूल हो जाते।
प्रामाणिक लगते है
रेत के बही-खाते।

अँधियारे की इज्जत
होती है कभी कभी।



## कहाँ नवोन्मेष ?

औचक ही आँखों से
फिसल गई धूप।
चोट्टे अँधियार को
टटोल रहे हाथ।

बनपाखी कोई अब
बोलता नहीं।
आँगन में मुग्ध पवन
डोलता नहीं।

नदी पूर्ण-गर्भा थी
सूख गई आज।
चंचल हर लहर लहर
हो गई अनाथ।

बूढ़ी हो गई गंध
कहाँ नवोन्मेष ?
विषमय विश्वास का
मोहित परिवेश।

विज्ञापित होता है
पतन मनहरण।
डाकिनी पिपासा के
सहज साथ साथ।



## शक होने लगता है

रिश्ते जब सिमट गये
हैं अदृश्य कोने में;
ऐसे में आँखें
उग आती हैं पेट में।
भूख बैठ जाती है
गाँवों में, खेत में।

नदी सरक जाती जब
रेत के बिछौने में;
ऐसे में झर जाता
पत्थर पँखुरी पँखुरी।
आदतें हवाओं की
लगती हैं आसुरी।

शक होने लगता
खुद के जीवित होने में;
ऐसे में चिन्ताएँ
बस दुकूल बुनती हैं।
कान देखने लगते
आँख ही सुनती हैं।

छिद्र बहुत हो जाते
आस्था के दोने में।



## समय टल रहा

हाँफ रहे हैं, ऊब चुके हैं
जीने का अभ्यास चल रहा।

बेतरतीव कि जीवन, जैसे
कोई सरकारी दफ्तर है।
संबंधों का शब्द शब्द अब
लगता लावारिश पत्थर है।

क्या तुक है? धरती ठंडी है
और उधर आकाश जल रहा।

दिन दिन बड़ी भयावह लगती
नभचुम्बी सुंदर इमारतें।
गुप्त रोग सी भीतर भीतर
बद सूरत हो रहीं आदतें।

सुबह सुबह पहचान गँवाकर
हिम्मत वाला सूर्य ढल रहा।

निकल रही है मुस्कानों की
शव यात्राएँ बारी बारी।
झुका रहे सिर, उम्मीदों के
सहज बुलबुले शाकाहारी।

खड़ी अपरिचय की दीवारें
स्वागत का है समय टल रहा।



## मोह व्यर्थ है

बीच धार में बहना है तो
तट बन्धों का मोह व्यर्थ है।

देह रागिनी बन जाती, जब
छू जाती रेशमी धूप है।
मन के रन्ध्रों में भर जातीं
शीतल आशीषें अनूप हैं।

रुद्ध, प्यार का जल हो जाए
अनुबंधों का मोह व्यर्थ है।

बाँहों की गतिमान मछलियाँ
जब चाहें तब नदी पार है।
चट्टानों से मुँह न मोड़ती
छन्दों में बहती बहार है।

आग न लग जाए रिश्तों में
प्रतिबन्धों का मोह व्यर्थ है।

अगर दिशाएँ रहें अबोली
खुले रखो, पर मन के फाटक।
दूर दूर तक अपने सुख का
अपना ही मन है उद्घाटक।

मन के पावन यात्रा पथ पर
कटिबन्धों का मोह व्यर्थ है।



## हँसते हैं अवरोध

घटे फासले, नहीं बढ़ा पर
अपने पन का बोध ।

अँधियारा, ज्यों पर फैलाए
उड़ती कोई चील ।
नाम-शेष रह गई पुनीता
विश्वासों की झील ।

आस्था के प्रति शब्द शब्द में
छलक रहा है क्रोध ।

गीले वस्त्रों सा बोझिल है
अन्तर का संगीत ।
नहीं कहीं पर जलता-बुझता
विह्वल कोई मीत ।

सम्बन्धों की सार्थकता का
अर्थ जहाँ प्रतिशोध ।

सपनों को निचोड़ कर आँखें
दान कर रही रक्त ।
निकल रही कोमल शब्दों से
ध्वनियाँ कितनी सख्त ।

संकल्पों को अपमानित कर
हँसते हैं अवरोध ।



## इस धरती पर

नया ढंग जीवन जीने का
इस धरती पर चलो तलाशें ।

रुके हुए पानी की मछली
बनकर हमने गलती क्यों की ?
भाड़ झोंकते रहे या कि फिर
भूख मिटाई है बगुलों की ।

कभी नहीं इतिहास बनाती
चलती फिरती नंगी लाशें ।

साँसों से यदि धुँआ उठ रहा
मत समझो यह चमत्कार है ?
अक्सर सूरज को धोखे में
रखता आया अंधकार है ।

कब तक खाता रहे आदमी
सुबह शाम झाँसे पर झाँसे ।

खुली सड़क पर हाँक लगाएँ
सुन ले यह बहरी आजादी ।
नहीं रहेगा अब से कोई
पौधा, बनकर गमलावादी ।

जान बूझकर क्यों चुभने दें
सही आँख मे गलत तमाशे ।



## सम्पादन फागुन का

सनन् सनन् घूम रहा
मस्त पवन फागुन का ।
कर रहा जगह जगह
विज्ञापन फागुन का ।

चला रहा है महुआ
टेसू पर व्यंग्य बाण ।
कबीर बोलकर हुआ
नीम-गाछ सहज प्राण ।

अंतः पुर तक में है
अभिनन्दन फागुन का ।
कस लेता है सबको
भुज बंधन फागुन का ।

ऐसे में कौन रहे
किंचित भी मन-मसोस ।
स्वयं शिष्टता को भी
रहता है कहाँ होश ।

बातों से होता कब
मूल्यांकन फागुन का ।
पोर पोर भोग रहे
उद्वेलन फागुन का ।

भाल पर अबीर लगा
गालों पर है गुलाल ।
शंका-संकोच के
कटे सभी आल-जाल ।

सपनों में भी चलता है
कीर्तन फागुन का।
सक्रामक होता है
आन्दोलन फागुन का।

आकर्षक हर शीर्षक
राग मयी रचनाएँ।
हाशिए उछाह भरे
मन-प्राणों पर छाएँ।

रंगो का विशेषांक
सम्पादन फागुन का।
अबाध है, अचूक भी
वशीकरण फागुन का।



## अपने लिए

खेत खेत में मेड़ बाँधने में समर्थ हम,
अपने लिए अभी तक क्यों मरजाद न बाँधी ?

इतनी बड़े हो गये
पर्वत काट रहे हैं।
नाम प्रगति का –
विप कन्याएँ छाँट रहे हैं।

करते हैं अपनी थकान का हम विज्ञापन
पाँवों के गोखरुओं में भर भरकर चाँदी।

हलदी से कहते हैं
रंग नहीं है चोखा।
अब आशीप कहाँ
पग पग पर मिलता धोखा।

आदर्शों की फेहरिस्त तो बहुत बड़ी है,
मगर ढोल ही मालिक है, वंशी है बाँदी।

बनावटी हो गये कह कहे
चौपालों के।
भाव बढ़ गये, गुनिया
उच्चाटन वालों के।

पुरवइया ने प्रतीक्षकों को खूब रुलाया
अब सबकी इच्छा है अंतिम, आए आँधी।



## समर्पण गीत

अब कोई लय ताल न जिसमें
समय ! तुझे यह छन्द सर्मपित।
जिसका रूप
आज कुहरीला।
जिसके रंगों का
मुँह पीला।
जिसकी नहीं शिंजनी कोई
और धनुप भी जिसका खँडित।
जिसका सूरज
पंख हीन है।
लक्ष्य भ्रष्ट हर
किरण दीन है।
नहीं भाल पर जिस प्राची के
चुटकी भर दी कुम-कुम सुरभित।
यह न समझना
दिन न आएँगे।
अग्नि लेख फिर
लिखे जाएंगे।
तेरा छल ही आड़े आया
शब्दों से रस हुआ विसर्जित।



## नदिया के नाम पर

विकृत हो अर्थ का जब अपना चेहरा
ऐसे में भाषा का दरपन भी क्या करे ?

ठहरे जल में बोलो
कहाँ जल तरंग है ?
धूप और मछरी का
झूठा सत्संग है।

प्रगतिशील लहरें यदि झील में अतृप्त रहे
इस अभाव के लिए प्रभंजन भी क्या करे ?

नदिया के नाम पर
नाव अगर बाँध ली।
साक्षी कुछ सीपियाँ
और हवा जंगली।

समझ रहे लोग, चलो सागर से जुड़ गए
अचरज में डूबा परिवर्तन भी क्या करे ?

लगता है हर चेहरा
पानी के चित्र सा।
बादल, व्यवहार नहीं
करते अब मित्र सा।

सड़कों की साँसों से झरता तेजाब है,
साँपों से घिरा हुआ चंदन भी क्या करे ?



## दूर दूर तक द्वीप न कोई

कितने कठों में कब रुकतीं
जल की तरह प्रार्थनाएँ हैं।

प्रवहमान उद्‌गार नहीं है
मर्म गूढ़ अक्षर का बोले ?
जाने किस दुख के इंगित पर
आसमान ने डैने खोले।

दुपहर के आँगन में बैठीं
बारहमासी छायाएँ हैं।

स्वर उड़ते हैं नील कंठ से
कविता ने पहना है वल्कल।
कई कई स्तर दर्शन के
आहत प्रणय, रूप है विह्वल।

दूर दूर तक द्वीप न कोई
पालों वाली नौकाएँ हैं।

दैनन्दिन शर विद्ध हुआ मैं
निर्मलता खंडित होती है।
बचा खुचा सब कलुष जलाकर
पीड़ा मधु-मंडित होती है।

ओठों पर है खड़ी तर्जनी
गर्भवती कुछ शंकाएँ हैं।



## जूझना विरोधों से

हिम्मत है किसमें, जो
सही कदम को रोके ?

भीतर से आदमी
आज भी स्वतंत्र है
जूझना विरोधों से
जीवन का मन्त्र है।
बचकर अब चलना है
बहुत खा लिए धोखे।

अँधियारे से मशाल
करती कब समझौता ?
कायर, पशु हो सकता
आदमी नहीं होता।
सही आदमी को अब
ढूंढ़ रहे हैं मौके।

कल तक था आदमी
सवाल, अब जवाब है।
हकीकत है कडुवी यह
जिन्दगी, न ख्वाब है।
पाया है उसने कुछ
ठोस बहुत कुछ खो के।

माथे पर भीड़ के
आज जड़ा आदमी ।
कल तक जो था पड़ा
आज खड़ा आदमी ।

वार बार देख रहा
सूर्य जिसे मुंह धो के ।



## वे

तोड़ दिये पूजा के शंख
बीन कर बगुलो के पंख
वे कुछ गम्भीर हो गये।

आँखों में
अगर मानसून
बाकी के तन पर
नाखून

हँसकर ही कुचल दिये फूल
ओढ़ लिया हल्दिया दुकुल
तुक्का से तीर हो गये।

यादों में
टंगे हुए मित्र
फटे हुए
रिश्तों के चित्र

भूल गये ममता का गीत
सपनों का घाम और शीत
पचाकर फकीर हो गये।



## मौसम की बात करें

ऐंठने लगी नस-नस देह की
क्या हुआ
चलो आज मौसम की बात करें।

बात का न आदि और
बात का न अन्त है।
फूलों की चुभन आज
झेलता वसंत है।

कड़वाहट बैठ गई कंठ में
क्या हुआ
चलो आज मौसम की बात करें।

परम्परा से हटकर
विष अब रंगीन है।
नाम की इमारतें
देश छत विहीन है।

खुशबू का नाम यदि नही सुना
क्या हुआ
चलो आज मौसम की बात करें।

आँखों से झांक रही
अनुभव की तिक्तता।
शेष धुआँ ही धुआँ
आग का नहीं पता।

अलगोझे से रूठा गीत है
क्या हुआ
चलो आज मौसम की बात करें।



## समय के सिर पर

पहली बार हुआ है ऐसा
नहीं समय के सिर पर टोपी।
कल तक हाथ पैर थे, मुंह था
अगर न थी तो कमर नहीं थी।
लेकिन यह तो माया थी बस
सचमुच में जो अमर नही थी।
अब यह नौटंकी का कान्हा
चिढ़ा रही इसको हर गोपी।
दस्तावेजों के क्या कहने
काले कागज, उजले अक्षर।
छानबीन कर हार गये सब
हुआ न कोई अर्थ उजागर।
जूते तक नीलाम हो गये
बात नहीं यह ढोंकी-तोपी।
शीश महल में बैठे बैठे
इसने काफी शोर मचाया।
छेद कर दिये उस पत्तल में
जिसमें उसने भोजन पाया।
दुश्मन निकला उस मेहनत का
जिसने इसे सम्पदा सौंपी।



## बहस जारी है

आदमी सलीब पर
और वहस जारी है।

जासूसी से भरा
लगता हर दृश्य है।
नोटिस हड़ताल की
दे चुका भविष्य है।

वर्तमान बेखबर
और बहस जारी है।

ढोलक से, पीढ़ियाँ
खालीपन सीख रहीं।
हर छोटी बड़ी सड़क
खुले आम चीख रही।

हर शहर हरामखोर
और बहस जारी है।

दुमकटी सुबह यहाँ
और बाँझ शाम है।
अँधेरे की गलियों में
सूरज बदनाम है।

झुलस रही दोपहर
और बहस जारी है।



## खुशियों के डाकिए

संवेदन कालजयी
अर्थहीन लगते अब।

सूना आँगन, न कहीं
धान कूटती हवा।
भूलकर न गंध की
पतंग लूटती हवा।

आचरण महामहिम
दीन-हीन लगते अब।

लगता है सूरज,
हलवाहा भी रुका हुआ।
चील और गिद्धों के
सामने झुका हुआ।

पेड़ों के कहकहे भी
मलीन लगते अब।

झाँकते नहीं क्षण भर
खुशियों के डाकिए।
बोते है उत्पीड़न
मेघ अब मजाकिए।

ओठों पर गीतों के
रंग क्षीण लगते अब।



## छांव बुनने जा रहे हैं

सुना है कुछ लोग मिलकर
छांव बुनने जा रहे है।
भूख बैठी है सड़क के
किनारे कुछ मांगती सी।
प्यास को अब कौन लाकर
दे, दवा की एक शीशी।

धूल के कण नयी आंखें
पुन चुनने जा रहे है।
हर भरोसा लग रहा है
राम जी का ही भरोसा।
टोपियों पर, रोब जूते
गांठते है मालिकों सा।

नये हाथों से पुरानी
रुई धुनने जा रहे हैं।
कान से जो मैल निकला
कह रहे उपलब्धियां है।
बहीखातों में कसैली
गालियां है, फब्तियां हैं।

भ्रांति के घर क्रांति कीर्तन
रोज सुनने जा रहे है।



## धूप गीत

सुबह सुबह छर-हरी
रंग रूप रस भरी
आमंत्रण बाँट रही धूप।

हरा भरा मन होता
हरी भरी घास की तरह।
हँस पड़ते स्वप्न सब
खिले कपास की तरह।

दुपहर को नई सृष्टि
नये मूल्य, नई दृष्टि
लगता है डाँट रही धूप।

बाकी है जल बुझकर
टेसू के रंग अभी।
मौसम को सहने हैं
बचे खुचे व्यंग्य अभी।

शाम हुई, गहन क्षोभ
जीवन के लाभ लोभ
फिर भी है छाँट रही धूप।



## पता नहीं था

आँसू झूठे हो सकते हैं
पता नहीं था ।

सूरज बैठ गया कुर्सी पर
भोर हो गई ।
शायद नजर अँधेरे की
कमजोर हो गई ।
गिद्ध, लाश पर सो सकते हैं
पता नहीं था ।

वृक्षों में से वृक्ष निकल कर
झाँक रहे है ।
प्रश्नों के आँगन में ऐपन
आँक रहे है ।
कभी आईने रो सकते हैं
पता नहीं था ।

सम्बन्धों के शिल्पकार हैं
कोढ़ी कंधे ।
तैर रहे नाराज नदी में
सारे अंधे ।
आसमान को धो सकते है
पता नहीं था ।



## भला नहीं लगता है

पड़ेगा
मनुष्य को
पौधे की तरह
पुनः रोपना।

था समुद्र शक्ति का
औचक ही ढल रहा।
ज्यों मसान जलता है
वैसे ही जल रहा।

नियम है, वस्तु को
विसर्जन से छीनकर
सर्जन को सौंपना।

अस्मिता गँवाकर भी
बैठा है जुए में।
क्रांति की तलाश उसे
सुविधा के कुएँ में।

भला नहीं लगता है
घूरे को
और अधिक
ढांकना-तोपना।



## आँगन अब साफ नहीं

आकृतियाँ आपस में बतियाती हैं अक्सर,
कोई भी दरपन अब साफ नहीं।

भीड़ में अकेला है हर कोई
अपनापन नहीं लेन देन में।
ऊब रहा जीवन, ज्यों बैठा हो
एक मुसाफिर पूरी ट्रेन में।

सोच रह रहा घूरे पर बैठकर आदमी
पड़ोसी का आँगन अब साफ नहीं।

अर्थवान शब्दों को, अधरों का
आमंत्रण किंचित स्वीकार नहीं।
धरती के काँधे पर अटका है आसमान,
गिरने को बिलकुल तैयार नहीं।

आँखों में जाले कुछ इतने है आज भी
लगता है सावन अब साफ नही।

हर चेहरे पर चिपका हर शहर
शहर का नहीं कोई चेहरा।
प्यार भरी नजरों में अनबन है
रक्त में प्रपंच की परम्परा।

क्या होगा, खिड़कियाँ-दरवाजे सब खुले
हवाओं का चिंतन अब साफ नहीं।



## घूम रहीं आदतें

कहाँ हुई खत्म कहाँ
स्वयं की तलाश।

अपने भीतर कोई
झांकता नहीं।
भले बुरे का हिसाब
आंकता नही ।

सम्मोहक कोई भी
नहीं बाहुपाश।

मन पर लगती न कभी
किंचित सी चोट।
जीवन में यह कैसा
गूंगा विस्फोट ?

देह से नहीं जुड़ती
कोई भी सांस।

समझ की प्रदर्शनी
लगा कर भी आज।
आपस में आदमी
लगता नाराज।

घूम रही आदतें, मुखर—
बिना लिबास।



## मेरी आँखों में

बादल को शर्मिंदा कर दे
उतना जल मेरी आँखों में।

कुशल न पूछो, फिर भी सागर
लहरों वाला, खूब फबा है।
मेरी स्थिति, दो रातों के
बीच कि जैसे दिवस दबा है।

फिर भी अक्षय और अघोषित
है काजल मेरी आँखो में।

एक तरह से कर्जदार है
आज अभी तक अमा निशा भी।
आँसू बाँधे हुए मुट्ठियाँ
जिनमें मुस्कानों की चाभी।

सागर की लहरों से बढ़कर
है हलचल मेरी आँखों में।

कोई बाँध नहीं है सकता
प्रश्न बड़े हैं आसमान से।
हिम्मत निकल नहीं पाती है
कुंठा के काले मकान से।

बढ़ता जाता उम्मीदों का
पर जंगल मेरी आँखों में।



## अलसाया गाँव

धुंध को रजाई की तरह आज ओढ़कर
सूर्योदय तक न अभी जग पाया गाँव।

अँधियारे से उतरी
एक परत अँधियारी।
यहाँ वहाँ सूरज के
स्वागत की तैयारी।

ऐकांतिक गुफा में, शिकार तृप्त सिंह सा
किन्तु प्रश्नहीन पड़ा, अलसाया गाँव।

सीढ़ियाँ उतरकर
आई हवा जमीन पर।
बरसाती कीड़े
हँसने लगे इधर-उधर।

बादल के किसी एक आवारा टुकड़े की
परछाई सा लेकिन भकुवाया गाँव।

अचानक ही सूर्य के
साथ सभी दौड़ गये।
देखेगा, सोचेगा—
हाय, मुझे छोड़ गये।

लगेगा, अकेले ही जामुन जो बेच रहा
उस अनाथ बच्चे सा सँकुचाया गाँव।



## हथेलियों की कसमें खाकर

खेत उदास बहुत हैं, फूले
फूल न सरसों के।

अपनी सूनी आँखें लेकर
आकुल हलवाहे।
तौल रहे वे बार-बार
अपनी सार्थक बाँहें।

एकाएक झर गये कैसे
सपने बरसों के।

लगता है लड़ने भिड़ने की
लगन हुई ठंडी।
इसीलिए यह चिढ़ रहा है
मौसम पाखंडी।

सन्नाटे में मोर नाचते है
बस प्रश्नों के।

कमी नहीं होगी सुगंध की
इच्छाओं के लिए।
हथेलियों की कसमें खाकर
अगर मनुष्य जिए।

चुनौतियों के, आएँगे
इस तरह कई मौके।



## होरी जैसा दिन

होरी जैसा दिन दुखियारा
धनिया जैसी रात।

सच्चाई के पहन मुखौटे
अफवाहें बैठीं।
मैला हुआ पेट का नक्शा
पीठ रही ऐंठी।

मुंह का सारा स्वाद चुराकर
चहक रही है बात।

आहत शब्द, टूटते अक्षर
अर्थ उदास हुआ।
जीवन रस अंजुरी में भर लें
कहाँ प्रयास हुआ।

बहते खूब कागजी आँसू
भ्रमर गीत है मात।

नहीं चाहता सूर्य कभी
आकाश रहित होना।
एक बीज को सिर्फ चाहिए
धरती का कोना।

फिर भी चुप है नागफनी का
रक्त नहाया गात।





नारायणलाल परमार

जन्म : १ जनवरी १९२७ ई०

जन्म स्थान : अंजार (कच्छ) गुजरात

मातृभाषा : गुजराती (लेखन प्रारम्भ से ही हिन्दी में)

शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी), साहित्यरत्न, विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ, भागलपुर (बिहार) द्वारा विद्यावाचस्पति की मानद उपाधि।

प्रकाशित पुस्तकें : तीन उपन्यास, एक कहानी संग्रह, चार काव्य संग्रह और पन्द्रह बालोपयोगी पुस्तकें।

विशेष : शासकीय महाविद्यालय, धमतरी, रायपुर मध्य प्रदेश से सन् १९८५ में हिन्दी विभागाध्यक्ष पद से सेवा निवृत्त।

स्थायी पता : पीटर कॉलोनी, टिकरापारा, धमतरी, रायपुर, मध्य प्रदेश।